न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी

■ अवधेश कुमार
वरिष्ठ पत्रकार

पाकिस्तान संबंधी भारतीय नीति की त्रासदी रही है कि जब भी कोई बड़ा आतंकवादी हमला होता है, जनता का रोष चरम पर पहुंच जाता है सरकार दबाव में कुछ कदम उठाती है, और कुछ समय बीतने के बाद धीरे-धीरे भारतीय पग शिथिल पड़ जाते हैं। इसका मतलब हुआ कि पाकिस्तान प्रेरित आतंकवाद के संदर्भ में हमारे पास कोई सुविचारित दीर्घकालीन रणनीति है ही नहीं। संसद हमले के बाद युद्ध की अवस्था में सैनिकों को नियंत्रण रेखा से लेकर सीमा पर लामबंद किया गया, नौसना समुद्र में घुमड़ने लगी और युद्धक विमान आकाश में। दुनिया को लगा कि अब भारत पाकिस्तान पर हमला करने ही वाला है। अमेरिका से लेकर ब्रिटेन तक युद्ध टालने के लिए सक्रिय हुए लेकिन अटलबिहारी वाजपेयी सरकार ने साफ कर दिया कि या तो सीमा पार से आतंकवाद का निर्यात पाकिस्तान रोके या हम रोकेंगे। इसी बीच, 14 मई, 2002 को जम्मूपठानकोट हाईवे पर एक बस एवं सैनिक कॉलोनी पर आतंकवादी हमलों (कालूचक संहार) के बाद वाजपेयी ने स्वयं नियंत्रण रेखा पर जाकर सैनिकों के बीच भाषण दिया जिसमें निर्णायक कार्रवाई की बात थी। पाकिस्तान दबाव में आया, आज जैश, लश्कर या अन्य जो संगठन प्रतिबंधित हैं, वो उसी समय हुआ था। सात लाख सैनिक 10 महीने तक तैनात रहे थे। उसके बाद करगिल के षड्यंत्रकारी जनरल परवेज मुशर्रफ के आचरण में बदलाव भी दिखा।

उन्होंने युद्धविराम समझौता किया जो उनके शासन मे रहने तक कायम रहा। इस बाध्यकारी कूटनीति का अत्यंत ही आंशिक परिणाम आया। चूंकि पहली बार ऐसा हुआ इसलिए लगा कि पाकिस्तान बदल रहा है। यह भूल साबित हुई। हां, आतंकवाद के संदर्भ में पाकिस्तान के खिलाफ भारत की सैन्य भृकुटि तनी हुई दुनिया को दिखी तो उसी दौरान। न उसके पहले ऐसा हुआ था, न उसके बाद हुआ। पाकिस्तान अपने नाभिकीय हथियारों का इस्तेमाल दुनिया को यह बताने के लिए करता है कि यदि भारत ने सैन्य कार्रवाई की तो नाभिकीय युद्ध का खतरा पैदा हो जाएगा। मोदी सरकार ने सितम्बर, 2016 में सर्जिकल स्ट्राइक करके यह मिथक तोड़ दिया।

चलाना होगा वैचारिक अभियान

आंतरिक स्तर पर आतंकवादियों को मार डालने, गिरफ्तार करने या आत्मसमर्पण के लिए मजबूर करने की सुरक्षा बलों की कार्रवाई सघन रूप से चल रही है, जिसका परिणाम है, रिकॉर्ड संख्या में आतंकवादियों की मौत। कश्मीर को वैश्विक जेहाद का भाग बनाकर इसे इस्लामिक राज बनाने के विचार से जो मजहबी कट्टरपंथ और आतंकवादी बनकर जन्नत पाने की भावना नवजवानों में पैदा की गई है, उसे खत्म करने के लिए कार्यशालाओं के माध्यम से वैचारिक बदलाव का अभियान चलाना होगा। इसका संकेत 20 फरबरी को सेना, पुलिस एवं सीआरपीएफ की संयुक्त पत्रकार वार्ता में मिला। अलगाववादी हुर्रियत नेताओं की सुरक्षा वापस ले ली गई है तथा उनकी सुविधाएं समाप्त की जा रही हैं, जिससे उनका सक्रिय रहना कठिन हो जाए। किंतु इसके साथ उनके खिलाफ कानूनी कार्रवाई भी जरूरी है। अब प्रश्न है कि पाकिस्तान के साथ क्या किया जाए? पाकिस्तानी प्रधानमंत्री इमरान खान ने अपने बयान में भारत के पास अपने स्तर पर कार्रवाई के अलावा कोई विकल्प छोड़ा ही नहीं है। तो भारत को ऐसे कदम उठाने ही होंगे जिनसे आतंकवाद के राक्षस का अंत हो और भारत के खिलाफ हिंसा करनेकरवाने के विचार तक से उसे कंपकंपी पैदा हो जाए या वह इस अवस्था में ही न रहे। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम एकाएक युद्ध की घोषणा कर दें। किसी भी कार्रवाई से जुड़े सारे पहलुओं का विचार कर उनके अनुरूप पूर्व तैयारी आवश्यक है। सबसे पहले मान लिया जाए कि पाकिस्तान का जन्म इस्लाम की जिस सोच से हुआ उसका एक राष्ट्रीय लक्ष्य भारत का अंगभंग करना है। इसे स्वीकार करने के साथ एक बार ऐसी दीर्घकालीन रणनीति बन जाए जिस पर राजनीतिक सहमति हो और सरकार के आनेजाने से यह बदले नहीं।

तत्काल भारत ने मोस्ट फेवर्ड नेशनल का दरजा वापस लेकर पाकिस्तानी सामानों पर 200 प्रतिशत का शुल्क लगा दिया है। पाकिस्तान और भारत के बीच व्यापार इतना कम है कि इसका बहुत ज्यादा असर नहीं होगा लेकिन एकएक पैसे के लिए तरसते पाकिस्तान के लिए यह भी छोटा आघात नहीं है। दुनिया भर में आतंकी फंडिंग और मनी लॉन्ड्रिंग के खिलाफ काम करने वाली संस्था फाइनेंशियल एक्शन टास्क फोर्सएफएटीएफ में भारत आतंकवाद के प्रायोजन और उसके वित्तपोषण का प्रमाण देकर पाकिस्तान को काली सूची में डलवाने के अपने कूटनीतिक अभियान को सघन करेगा। भारत के प्रयासों से उसे ग्रे सूची में डाला जा चुका है। पाकिस्तान को काली सूची में डाला जाता है, तो उसे विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, एशियाई विकास बैंक, यूरोपीय संघ जैसी संस्थाओं से कर्ज मिलना मुश्किल हो जाएगा। उसके बाद कई देशों के लिए खुलकर पाकिस्तान को आर्थिक और वित्तीय सहयोग कठिन होगा। हालांकि तत्काल इसकी संभावना कम है, क्योंकि तालिबान से बातचीत में अमेरिका पाकिस्तान का सहयोग चाहता है। इसलिए वह एकदम उसके सीधे खिलाफ नहीं हो सकता। बावजूद इससे पाकिस्तान दबाव में तो आएगा ही। हर विश्व मंच और विश्व संस्था में पाकिस्तान के खिलाफ वातावरण बनाने की कूटनीतिक रणनीति पर भारत काम करने लगा है। इसे विदेश नीति के स्थायी अंग के रूप में बदलना होगा। इसके बाद क्या?

प्रधानमंत्री का बयान है कि कार्रवाई का तरीका, स्थान और समय तय करने के लिए सेना को पूरी स्वतंत्रता दे दी गई है। ऐसा लगता है कि भारत ने अपना लक्ष्य व्यापक रखा है, और यही होना चाहिए। इसमें सर्जिकल स्ट्राइक से लेकर प्रमुख आतंकवादी संगठनों के ठिकानों पर औचक हवाई हमले तथा सीधा युद्ध तक शामिल हैं।

लड़ना ही होगा प्राणपण से

पाकिस्तान और चीन से बगैर लंबे युद्ध के विवादों का निपटारा संभव नहीं। आज न कल आपको इनसे प्राणपण से लड़ना ही होगा और हर प्रकार की क्षति के लिए भी तैयार रहना होगा किंतु क्या देश की मानसिक तैयारी ऐसी है कि भारी संख्या में मानवीय क्षति की पीड़ा और आघात को झेल सके? यह बड़ा प्रश्न है। वैसे, इस समय पाकिस्तान ने सारे आतंकवादी शिविरों और लांचिंग पैड को बंद कर आतंकवादियों को सैन्य ठिकानों या रिहायशी इलाकों में स्थानांतरित कर दिया है। तों तत्काल सर्जिकल स्ट्राइक या शिविरों को नष्ट करने के लिए हवाई हमले का विकल्प नहीं है। हालांकि लगभग 5060 विंटर पोस्ट, जिन्हें हर साल खाली करा लिया जाता था, में पाकिस्तानी सैनिक तैनात है। इसका मतलब यह कि वह भारत की ओर से हमले का जवाब देने की तैयारी कर रहा है। सैनिक कार्रवाई का सर्वप्रमुख लक्ष्य पाक अधिकृत कश्मीर को मुक्त कराना होगा। इसी से भारत सामरिक रूप से बेहतर स्थिति में आ पाएगा एवं आतंकवादियों के घुसपैठ का स्त्रोत और पथ, दोनों खत्म हो जाएंगे। पाक अधिकृत कश्मीर का एक बड़ा क्षेत्र पाकिस्तान ने चीन को दिया हुआ है। चीन पाक आर्थिक गलियारा भी पाक अधिकृत कश्मीर से गुजरता है। तो चीन की भूमिका का भी आकलन करना होगा। सेना को पूरा लक्ष्य देकर उनका मत जानना होगा। 1971 में इंदिरा गांधी ने जनरल मॉनेकशॉ को जब बांग्लादेश में घुसने के लिए कहा तो उन्होंने जवाब दिया, पहले हमें तैयारी करनी होगी और जब हो जाएगा तो आपको बताऊंगा और वही हुआ।

किंतु इसके परे भी समस्या को स्थायी रूप से खत्म करने के विकल्प हमारे पास मौजूद हैं, जिन पर खुलकर काम करने का साहस भारत ने कभी दिखाया ही नहीं। पाकिस्तान में मजहबी, जातीय और क्षेत्रीय जटिलताएं एवं तनाव काफी ज्यादा हैं। पाक अधिकृत कश्मीर से लेकर पाकिस्तान के चारों राज्यों में यह समस्या है। ब्लूचिस्तान में आजादी का आंदोलन 1947 से ही चल रहा है। खैबर पख्तूनख्वा तथा सिंध में भी आजादी का बिगुल बजता रहता है। 15 अगस्त, 2016 को प्रधानमंत्री द्वारा लाल किले के अपने संबोधन में गिलगित बल्तिस्तान और ब्लूचिस्तान का नाम लेने से ही माहौल बदल गया था। 2015 से भारत ने गिलगित बल्तिस्तान सहित पाक अधिकृत कश्मीर एवं ब्लूचिस्तान पर नीति बदलने का संकेत देना आरंभ किया था, लेकिन उस पर शायद विराम लग गया। यही समय है जब भारत को बेहिचक घोषणा कर देनी चाहिए कि गिलगित बल्तिस्तान सहित पूरे पाक अधिकृत कश्मीर के लोगों को पाकिस्तान के खिलाफ हिंसारहित लड़ाई में भारत हर तरह की सक्रिय मदद करेगा। इसी तरह ब्लूचिस्तान के स्वतंत्रता सेनानियों को मदद शुरू हो, सिंध के जियो सिंध जैसे आंदोलनों तथा फ्रंटियर प्रोविंस यानी खैबर पख्तूनख्वा में पाकिस्तान विरोधी पक्ष को ताकत दी जाए। सिंध मुहाजिर कौमी मूवमेंट के नेता अल्ताफ हुसैन भारत की मदद के लिए लालयित हैं। भारत की अनदेखी के कारण उनका संगठन तोड़ दिया गया है। भारत की सक्रियता उसमें नई जान फूंक देगी। तात्पर्य यह कि पाकिस्तान को चार या उससे ज्यादा भागों में भंग कर देने का लक्ष्य बनाकर काम किया जाए। इसके लिए बाजाब्ता एक ढांचा खड़ा हो तथा निश्चित बजट आवंटित किया जाए। जितना खर्च हम अपनी सुरक्षा पर करते हैं, उसका एक अंश स्थायी रूप से आवंटित कर दिया जाए तो पाकिस्तान इतना उलझ जाएगा कि वह भारत को घाव देने की सोच भी नहीं सकेगा। अंततः वह विखंडित भी होगा। भारत के पास यह सबसे उपयुक्त विकल्प है। अगर कोई देश बीच में आता है, तो उसे कहा जाएगा कि आप पाकिस्तान को कहिए अपना घर संभाले। लेकिन यह सब स्थायी दीर्घकालीन नीति का हिस्सा होना चाहिए। ■

इलस्ट्रेशन : जे.पी. त्रिपाठी

पाकिस्तान में मजहबी, जातीय और क्षेत्रीय जटिलताएं एवं तनाव काफी ज्यादा हैं। पाक अधिकृत कश्मीर से लेकर पाकिस्तान के चारों राज्यों में यह समस्या है। ब्लूचिस्तान में आजादी का आंदोलन 1947 से ही चल रहा है। खैबर पख्तूनख्वा तथा सिंध में भी आजादी का बिगुल बजता रहता है

पुलवामा और पनीली एकता का राजनीतिक-पाखंड

■ प्रमोद जोशी
वरिष्ठ पत्रकार

लोक सभा के पिछले चुनाव में पाकिस्तान, कश्मीर और राम मंदिर मुद्दे नहीं थे। पर लगता है कि आने वाले चुनाव में राष्ट्रवाद, देशभक्ति, कश्मीर समस्या और पाकिस्तानी आतंकवाद बड़े मुद्दे बनकर उभरेंगे। पुलवामा कांड इस सिलसिले में महत्त्वपूर्ण ट्रिगर का काम करेगा। एक अरसे के बाद ऐसा लगा था कि देश में सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच किसी एक बात पर मतैक्य है। दोनों को देशहित की चिंता है, और दोनों चाहते हैं कि राष्ट्रीय एकता और अखंडता की खातिर सरकार और विपक्ष एक साथ रहें। पर यह एकता क्षणिक थी, और देखते ही देखते गायब हो गई। अब मोदी से लेकर अमित शाह और राहुल गांधी, ममता बनर्जी और सीताराम येचुरी तक पुलवामा हमले से ज्यादा उसके राजनीति नफेनुकसान को लेकर बयान दे रहे हैं। इनमें निशाना जैशएमोहम्मद या पाकिस्तान नहीं, प्रतिस्पर्धी राजनीतिक दल हैं।

पुलवामा हमले के बाद शनिवार 16 फरवरी को सरकार ने जो सर्वदलीय बैठक बुलाई थी, उसमें अरसे बाद राजनीतिक दलों के रुख में सकारात्मकता नजर आई। बैठक गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने बुलाई थी। बैठक के बाद कांग्रेस के गुलाम नबी आजाद ने कहा, 'हम राष्ट्र और सुरक्षा बलों की एकता और सुरक्षा के लिए सरकार के साथ खड़े हैं। फिर चाहे कश्मीर हो या देश का कोई और हिस्सा। आतंकवाद के खिलाफ लड़ाई में कांग्रेस पार्टी सरकार को अपना पूरा समर्थन देती है।'

देश की आत्मा पर हमला

बैठक और बयान के पहले राहुल ने 15 फरवरी को प्रेस कांफ्रेंस में कहा था, आतंकी हमले का मकसद देश को विभाजित करना है। यह हिंदुस्तान की आत्मा पर हमला है। हमारे दिल में चोट पहुंची है। पूरा का पूरा विपक्ष, देश और सरकार के साथ खड़ा है। करीबकरीब यही बात मनमोहन सिंह ने भी कही। पर्यवेक्षकों को इस एकता पर विस्मय था। जाहिर है कि हमले का सदमा बड़ा था, और देश भर में नाराजगी थी। यह एकता भी एक प्रकार का राजनीतिक फैसला था। राजनीतिक दलों को लगा कि जनता एकमत होकर जवाब देना चाहती है। व्यावहारिक सच यह है कि ऐसी एकता के ऐसे मौके कभीकभी आते हैं, और दोतीन दिन के लिए ही आते हैं। शायद सर्वदलीय बैठक में भी दोनों पक्षों के राजनेताओं ने बेमन से एकता की बातें की थीं। सब जानते थे कि चुनाव सिर पर हैं, और यह एकता हमारे पैरों में बेड़ी की तरह बंध जाएगी। ये बातें किसी काम में नहीं आएंगी। विरोधी दलों को यह भी शायद फौरन ही समझ में आ गया कि सरकार के साथ खड़े होने का मतलब है, इस मौके पर बने जनमत को बीजेपी के पक्ष में पूरी तरह जाने देना। राष्ट्रीय अखंडता का सारा जिम्मा बीजेपी के नेताओं ने ले लिया। इस राष्ट्रप्रेम की एक झलक देश के दूसरे इलाकों में कश्मीरी नागरिकों तथा छात्रों की घेराबंदी के रूप में दिखाई पड़ी। इन खबरों के पीछे अतिरंजना भी थी, पर ये पूरी तरह गलत भी नहीं थीं।

ममता का धमाका

सोमवार आतेआते पहला बड़ा धमाका ममता बनर्जी ने किया। उन्होंने कहा, चुनावों से ठीक पहले ही इस तरह का हमला क्यों हुआ? खुफिया रिपोर्ट होने के बाद भी सीआरपीएफ के इतने बड़े काफिले को एक साथ क्यों भेजा गया? जवानों को एयरलिफ्ट क्यों नहीं किया गया? इसमें कितना पैसा खर्च हो जाता। इसके अलावा, उन्होंने कहा कि सरकार को उन लोगों के खिलाफ कार्रवाई करनी चाहिए, जिन्होंने इस हमले को अंजाम दिया है, लेकिन अगर इस मौके पर बीजेपीआरएसएस ने दंगे की कोशिश की तो देश माफ नहीं करेगा। इतना ही नहीं, ममता ने अपना फोन टैप होने का आरोप भी लगाया। गुरुवार 21 फरवरी आतेआते इस पनीली एकता की धज्जियां उड़ गईं। पहले कांग्रेस ने प्रधानमंत्री मोदी पर निशाना साधा, जवाब में रविशंकर प्रसाद ने कहा कि कांग्रेस प्रवक्ताओं और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान के स्वर एक जैसे हैं।

कांग्रेस प्रवक्ता रणदीप सिंह सुरजेवाला ने कहा था कि हमले के वक्त मोदी जिम कॉर्बेट नेशनल पार्क में घड़ियालों के साथ एक फिल्म की शूटिंग कर रहे थे। मोदी ने शहीदों का अपमान किया है। इस पर बीजेपी ने फौरन जवाबी प्रेस कांफ्रेंस की जिसमें प्रसाद ने कहा, कांग्रेस से क्या उम्मीद करें। उन्होंने तो सर्जिकल स्ट्राइक के भी सबूत मांगे थे। आर्मी चीफ को निशाना बनाया था।

पुलवामा हमले का सदमा बड़ा था, और देश भर में नाराजगी थी। इसके विरोध में विपक्षी एकता भी एक प्रकार का राजनीतिक फैसला था। राजनीतिक दलों को लगा कि जनता एकमत होकर जवाब देना चाहती है। व्यावहारिक सच यह है कि ऐसी एकता के ऐसे मौके कभी-कभी आते हैं, और दो-तीन दिन के लिए ही आते हैं। शायद सर्वदलीय बैठक में भी दोनों पक्षों के राजनेताओं ने बेमन से एकता की बातें की थीं

बीजेपी को तोहफा!

राहुल और ममता समेत समूचे विपक्ष को फौरन समझ में आ गया कि यह बीजेपी को तोहफे की तरह है। वह तो इस मौके का पूरा फायदा उठाएगी। इस मौके पर सेना ने कोई कार्रवाई की तो वह भी बीजेपी के खाते में जाएगी, जैसाकि सितम्बर, 2016 में सर्जिकल स्ट्राइक के मौके पर हुआ था। पर पहल कांग्रेस के बजाय ममता ने की। नवम्बर, 2016 में नोटबंदी के बाद सरकार के खिलाफ पहला मोर्चा उन्होंने ही खोला था। वे यह भी जानती थीं कि देरसबेर कांग्रेस अपना सिर उठाएगी। इसलिए उसके पहले ही कुछ करना होगा। विरोधी दलों की समझ से चुनाव के ठीक पहले हुआ पुलवामा हमला सीधेसीधे सरकार के नाम तोहफा है। यह बीजेपी के पक्ष में माहौल बना देगा। इसे घुमाने की जरूरत है। जाहिर है कि इंटेलिजेंस फॅल्यर और सीआरपी के सैनिकों को हवाई सुविधा न दिए जाने के सवाल उठाए गए। सन 1962, 65, 71 और 99 में देश में अभूतपूर्व राजनीतिक एकता नजर आई थी। तब उस एकता के कुछ अंक विरोधी दलों को भी मिलते थे, पर वैसी ही एकता अब कायम होने का मतलब है सारे प्रयासों पर पानी फिरना। उधर, बीजेपी भी विरोधी दलों को देशद्रोही साबित करने पर उतारू है। कांग्रेस को भी समझ में आ गया कि पिछले दो साल से चल रहे उसके सारे प्रयास बेकार हो जाएंगे।

कहना मुश्किल है कि कुछ देर के लिए बनी इस पनीली कौमी एकता को किसने तोड़ा। अलबत्ता, 14 की शाम से ही वॉट्सएप और फेसबुक पर संदेश आ रहे थे कि यह 'पहले जैसी कमजोर' सरकार नहीं है। कुछ न कुछ करारा जवाब देगी। उधर, अगले ही दिन यानी 15 को देश की पहली सेमी हाई स्पीड ट्रेन वंदे भारत एक्सप्रेस को हरी झंडी दिखाते हुए नरेन्द्र मोदी ने शहीद सैनिकों के परिवारों के प्रति संवेदनाएं व्यक्त करते हुए कहा कि इस मौके पर राजनीति न करें। कहा, हमारी आलोचना करने वालों से मैं अनुरोध करना चाहता हूं कि यह भावनात्मक पल है। ऐसे में राजनीतिक लाभ उठाने से दूर रहें। यह संदेश अपनी पार्टी के लोगों के लिए नहीं था, बल्कि विरोधियों के नाम था। बीजेपी के नेतृत्व को समझ में आ चुका था कि इस परिस्थिति का राजनीतिक लाभ उठाना चाहिए।

हमला क्यों हुआ?

ममता ने सवाल किया कि चुनाव के ठीक पहले यह हमला क्यों हुआ? पता नहीं वे क्या कहना चाहती हैं, पर इस हमले के राजनीतिक निहितार्थों को कई कोणों से समझने की जरूरत है। पाकिस्तान के सत्ता प्रतिष्ठान पर यदि वहां की सेना और कट्टरपंथियों का कब्जा है, तो भारत में कट्टरपंथी सरकार का आना उन्हें भाएगा। तभी वे अपने लिए बेहतर साधनसुविधाएं हासिल कर सकते हैं। बजट की मोटी धनराशि पर कब्जा कर सकते हैं, और जनता को कट्टरपंथी बातों से भरमाए रख सकते हैं। दूसरे ऐसा भी लगता है कि पश्चिम एशिया में मार खाने के बाद इस्लामिक स्टेट और अल कायदा से जुड़े तत्वों का रुख अफगानिस्तान और कश्मीर की तरफ है। उनकी दूरगामी रणनीति पाकिस्तान, अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक अपने प्रभाव को स्थापित करने की है। हमारी राजनीति लोक सभा चुनावों तक के बारे में ही सोचती है, जबकि उसे कश्मीर के बारे में आम राय बनानी चाहिए।

राजनीतिक विमर्श की दिशा

कांग्रेस पार्टी ने राष्ट्रीय सुरक्षा पर एक विजन डॉक्यूमेंट तैयार करने का फैसला भी किया है, जिसकी जिम्मेदारी लेफ्टिनेंट जनरल डीएस हुड्डा (सेनि) के अधीन बनी एक टास्क फोर्स को दी है। जनरल हुड्डा सन 2016 में उत्तरी कमान के प्रमुख थे। उनके नेतृत्व में ही सर्जिकल स्ट्राइक हुई थी। कांग्रेस शायद बताना चाहती है कि हम राष्ट्रीय सुरक्षा को महत्त्व देते हैं। शायद यह बीजेपी की आक्रामक रणनीति का जवाब है, पर यह रणनीति भी लोक सभा चुनाव की तैयारी से ज्यादा नहीं लगती। शायद हुड्डा के विजन डॉक्यूमेंट की एक झलक कांग्रेस के लोक सभा के लिए जारी होने वाले घोषणा पत्र में भी दिखाई देगी। पुलवामा हमले के बाद लगता है कि राष्ट्रीय राजनीतिक विमर्श की दिशा में कुछ बदलाव आएगा। पर यह विमर्श चुनाव के फायदेनुकसान तक सीमित रहेगा। इसके पीछे कश्मीर समस्या के समाधान की मनोकामना नहीं होगी। लोक सभा चुनाव के साथ कश्मीर विधानसभा के चुनाव होने की संभावना भी है। कश्मीर पर सन 1994 में भारतीय संसद ने एक प्रस्ताव पास किया था। जरूरत इस बात की है कि देश के राजनीतिक दल मिलकर बैठें और कश्मीर पर आम राय बनाएं। टकराव की राजनीति देश के लिए घातक होगी। पर लगता नहीं कि राजनीतिक दल इस बात को ठीक से समझ पा रहे हैं। ■

जय-जयकार से ज्यादा इंसाफ की दरकार

■ अनिल जैन
वरिष्ठ पत्रकार

दो साल पहले 9 जनवरी, 2017 को सीमा सुरक्षा बल यानी बीएसएफ के एक जवान तेज बहादुर यादव ने सोशल मीडिया पर एक वीडियो अपलोड कर जवानों को घटिया भोजन दिए जाने की शिकायत की थी। उन्होंने कहा था कि सरकार तो सैनिकों के लिए आवश्यक वस्तुएं उपलब्ध करवाती है, लेकिन उच्चाधिकारी इन्हें अवैध ढंग से बाजार में बेच देते हैं और इसका खमियाजा निचले स्तर पर जवानों को भुगतना पड़ता है। तेज बहादुर जम्मूकश्मीर के पुंछ सेक्टर में नियंत्रण रेखा यानी एलओसी पर तैनात बीएसएफ की टुकड़ी का हिस्सा थे। उन्होंने वीडियो में आरोप लगाया था कि उन्हें पानी जैसी पतली दाल परोसी जाती है, जिसमें सिर्फ हल्दी और नमक होता है तथा इसके साथ जली या अधपकी रोटियां दी जाती हैं। तेज बहादुर का यह वीडियो सोशल मीडिया पर खूब वायरल हुआ था। मामले ने इतना तूल पकड़ा था कि केंद्रीय गृह मंत्री राजनाथ सिंह को पूरे मामले की जांच का आदेश देना पड़ा था। इसी दौरान बीएसएफ के अफसरों की ओर से तेज बहादुर को प्रताड़ित करने का सिलसिला शुरू हुआ। तेज बहादुर ने परेशान होकर स्वैच्छिक सेवा निवृत्ति (वीआरएस) के लिए आवेदन किया, जिसे खारिज कर दिया गया। बीएसएफ की ओर से कहा गया कि तेज बहादुर जांच का अहम हिस्सा है, लिहाजा जांच पूरी होने तक वे बीएसएफ नहीं छोड़ सकते। करीब तीन महीने बाद बीएसएफ की ओर से गृह मंत्रालय को जांच रिपोर्ट भेजी गई, जिसमें तेज बहादुर की खराब भोजन दिए जाने की शिकायत को गलत बताते हुए उसे गंभीर अनुशासनहीनता का दोषी करार दिया गया। चूंकि मामले की जांच करने वाले बीएसएफ के ही आला अफसर थे और तेज बहादुर का आरोप भी उन्हीं पर था, लिहाजा जांच का निष्कर्ष यही निकलना था। बहरहाल, जांच पूरी होने के चंद दिनों बाद यानी 19 अप्रैल, 2017 को तेज बहादुर को बीएसएफ से बर्खास्त कर दिया गया। बर्खास्तगी संबंधी आदेश में कहा गया कि तेज बहादुर ने आधारहीन आरोपों से सेना की छवि को नुकसान पहुंचाया है।

सरकारी सुलूक

सरकारी तंत्र और सुरक्षा बलों के अफसरों ने यह संवेदनहीनता एक कार्यरत जवान के साथ बरती। ऐसे में अंदाजा लगाया जा सकता है कि सेवा निवृत्त हो चुके जवानों या शहीद जवानों के परिवारजनों को अपने जायज हकों को हासिल करने के लिए किस तरह की दुश्वारियों का सामना करना पड़ता होगा। उनके साथ सरकारी तंत्र और सैन्य बलों के आला अफसर किस तरह पेश आते होंगे।

हमारी सरकारें और उनका राजनीतिक नेतृत्व वर्ग अपने भाषणों में तो सैन्य बलों को लेकर खूब चिंतित और संवेदनशील दिखाई देता है। खासकर मौजूदा सरकार और सत्तारूढ़ दल के नेता तो सेना से अपने लगाव को प्रदर्शित करने का कोई मौका नहीं गंवाते हैं। जब भी किसी मामले में सेना की किसी लापरवाही या गलती पर कोई सवाल उठाता है तो उसे नसीहत दी जाती है कि वह सेना का सम्मान करे और सवाल उठाकर उसका मनोबल कमजोर न करें। कभीकभी तो सवाल करने वालों को देशविरोधी करार देने में भी देर नहीं की जाती। मीडिया के एक बड़े हिस्से से भी इसी तरह के सुर निकलते हैं। लेकिन जब भी आतंकवादियों और माओवादियों के हमले में या सीमा पर पाकिस्तानी और चीनी सेना के साथ होने वाली छिटपुट झड़पों में सुरक्षा बलों के जवान शहीद होते हैं तो उनके तथा उनके परिजनों के साथ होने वाला सरकारी सुलूक सारी सेनाभक्ति की कलई खोलना शुरू कर देता है। कभी देखने में आता है कि शहीद जवानों के शव गत्ते के बक्सों में रखकर उनके घर तक पहुंचाए दिए जाते हैं तो कभी शहीद के परिजनों को तात्कालिक तौर पर राहत राशि और फिर मुआवजा राशि देने में कोताही बरती जाती है।

जब भी किसी मामले में सेना की किसी लापरवाही या गलती पर कोई सवाल उठाता है तो उसे नसीहत दी जाती है कि वह सेना का सम्मान करे और सवाल उठाकर उसका मनोबल कमजोर न करें। कभी-कभी तो सवाल करने वालों को देश-विरोधी करार देने में भी देर नहीं की जाती

अर्धसैनिक-पूर्णसैनिक क्या होता है?

शुरुआत होती है मारे गए जवानों को शहीद का दर्जा देने के मामले से। मौजूदा नियमों के तहत सिर्फ सेना के जवानों को ही मारे जाने पर आधिकारिक तौर पर शहीद का दर्जा दिया जाता है। सरकार श्रेणियों के तहत सेना के अलावा अन्य सुरक्षा बलों को अर्धसैनिक बल माना और कहा जाता है। हालांकि ये अर्धसैनिक बल भी लड़ते हैं पूर्ण सैनिकबलों यानी सेना की तरह ही बल्कि एक तरह से ये तो हमेशा ही युद्धरत रहते हैं- कभी आतंकवादियों के खिलाफ तो कभी माओवादियों और कभी पूर्वोत्तर के उग्रवादी संगठनों के मुकाबिल। इस युद्ध में मारे जाने वाले जवानों को सरकार के मुखिया से लेकर मंत्री, तमाम राजनेता, मीडिया और आम लोग तक भले ही शहीद कहतेबताते रहे, मगर सरकारी तंत्र उन्हें शहीद नहीं मानता' इसीलिए उनके परिजनों को मुआवजा राशि सहित दूसरी सारी सुविधाएं भी शहीद माने जाने सैनिकों के परिजनों की तरह नहीं मिलतीं। यही नहीं, अर्धसैनिक बलों के सेवानिवृत्त जवानों और शहीदों के परिजनों को पहले जो पेंशन मिलती थी, वह भी केंद्र सरकार ने 2004 से बंद कर दी है। सवाल है कि यह अर्धसैनिक या पूर्णसैनिक क्या होता है? इस का जवाब शायद सरकारें भी ठीक से नहीं दे सकती। जब समझती ही नहीं होंगी तो जवाब देगी भी कैसे? पुलवामा के आतंकवादी हमले में केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के 44 जवानों की शहादत की घटना ने इस हकीकत को शिद्दत से उजागर किया है।

जहां तक शहीद जवानों के आश्रितों को मुआवजा राशि और उनके परिवार के किसी सदस्य को सरकारी नौकरी देने तथा उनके बच्चों की शिक्षा संबंधी व्यवस्था का सवाल है, इस बारे में राष्ट्रीय स्तर पर केंद्र और राज्य सरकारों के एकरूपता लिए हुए कोई तयशुदा मापदंड नहीं हैं। यही वजह है कि किसी राज्य में शहीद जवान के आश्रितों दस लाख रुपये तो किसी राज्य में 25-50 लाख और एक करोड़ रुपये तक दिए जाते हैं। किसी आश्रित परिजन को सरकारी नौकरी या बच्चों की शिक्षा आदि के बारे में भी कोई स्पष्ट नीति नहीं है। यह मामला सरकारों के विवेक और संवेदशीलता पर निर्भर रहता है। एक नंगी सचाई यह भी है कि इस मामले में शहीद की जाति, मजहब और क्षेत्रीयता की भी अहम भूमिका होती है।

शहीदों के परिजनों की तरह ही सेवानिवृत्त जवान भी सरकारों की भेदपूर्ण नीतियों के शिकार हैं। उनकी वर्षों पुरानी मांग है कि मिलिट्री सर्विसम्पे की तर्ज पर अर्ध सैनिक बलों के जवानों को भी पैरा मिलिट्री सर्विसम्पे दी जाए, सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों के आधार पर वन रैंक वन पेंशन लागू की जाए, हर राज्य में केंद्रीय अर्धसैनिक कल्याण बोर्ड की स्थापना हो, शहीद के आश्रित परिवार को मुआवजे के तौर पर एक करोड़ रुपये तथा परिवार के पुनर्वास की व्यवस्था हो और पुणे के सैनिक स्कूल की तर्ज पर हर राज्य में अर्धसैनिक स्कूल, इंजीनियरिंग तथा मेडिकल कॉलेज और हर राज्य के तमाम जिलों में डिस्पेंसरी की स्थापना की जाए।

अर्धसैनिक बलों के जवानों की तमाम दुश्वारियां और अपेक्षाएं पुरानी हैं, लेकिन पुलवामा कांड ने उन्हें गहराई से रेखांकित किया है। सवाल यही है कि युद्धोन्माद के शोर में क्या सरकार इस ओर ध्यान देगी या सिर्फ सेना का मुंहजुबानी गुणगान ही करती रहेगी? ■